

धर्म प्रचार (आध्यात्मिक पक्ष)

भाग - ५

ईश्वर ने 'देखन कउ प्रपंच कीआ' अनुसार अपनी मौज में इस सृष्टि का सृजन किया है। चौरासी लाख योनियों तथा अन्य अनगिनत 'तत्त्वों' का निर्माण करके, इनमें अदृश्य, सूक्ष्म स्वरूप में, स्वयं ही गुप्त रूप में प्रवृत्त है। इस इलाही 'ज्योति' के 'चारों ओर', 'अहम्' के भ्रम भुलाव का 'आवरण' होने के कारण, ये अलग-अलग 'अस्तित्व' बने हुए हैं, जिन्हें 'जीव' कहा जाता है। इन जीवों के जन्म, फलने-फूलने, प्रतिपालन, विकास तथा 'लय' होने के लिये, अपने इलाही 'हुकुम' अनुसार 'कुदरत' बना दी। इस कुदरत को, कोई बाहर की अलग 'हस्ती' नहीं चला रही। इस कुदरत में, हर एक वस्तु या जीव, उसकी अन्तरआत्मा 'में लिखे' इलाही 'हुकुम' द्वारा, जीवन व्यतीत कर रहा है।

“हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि”॥ (जपुजी साहिब)

यह 'हुकुम' किताबों में नहीं लिखा हुआ। यह तो प्रत्येक जीव के साथ, उसके सृजन के समय, आदि से अंतर-आत्मा में लिखा होता है। (Inherent and inlaid within every soul)। किताबों में लिखे हुए कानून तो मिट सकते हैं या बदल सकते हैं। परन्तु यह इलाही हुकुम, जीव की अंतरआत्मा 'में' लिखा होने के कारण, त्रुटिरहित, अटल, सदैव इकसार प्रवृत्त है। इलाही 'हुकुम' भिन्न-भिन्न योनियों के भिन्न-भिन्न योनियों के भिन्न-भिन्न जीवों में ओत-प्रोत लिपटा हुआ गुप्त रूप में प्रवृत्त है।

जब तक जीव इस इलाही 'हुकुम' को बूझ कर इसकी रज़ा में चलता है, तब तक वह आत्मिक, 'जीवन-रौ' में सहज स्वभाविक ही बहता हुआ, अपने 'हुकुमी' अकाल पुरुष की ओर 'खिंचा' चला जाता है।

परन्तु जब जीव, अपने 'अहम्' के भ्रम - भुलाव में, अपनी सयानप व चतुराई दिरवाता है और इलाही 'जीवन - रौं' की रवानगी में विघ्न डाल देता है, तो वह इलाही 'हुकुम' से विमुख होकर, त्रिगुणी मायिकी नियम 'जो मैं कीआ सो मैं पाइआ' (Karmic law) के अधीन जीवन भोगता है।

जीव - अकाल पुरुष के ज्योति - स्वरूप 'प्रकाश' की 'किरण' या 'ज्योति' है, इस कारण ईश्वर ने जीव के सृजन के साथ ही उसके पालन - पोषण और विकास का सम्पूर्ण तथा त्रुटिरहित प्रबन्ध अपने 'हुकुम' द्वारा कर दिया है।

जीव के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास को किसी बाहरी शक्ति के सहारे नहीं छोड़ा। बाहरी शक्ति के कानून अधूरे और गलत हो सकते हैं तथा बदल सकते हैं। परन्तु इलाही 'हुकुम' सम्पूर्ण त्रुटिरहित, अटल आदि से इकसार चल रहा है और इस तरह सदैव चलता रहेगा।

सांसारिक 'माँ' अपने बच्चे की सदा शुभ - चिंतक है, उसका भला चाहती है तथा उसे प्यार करती है।

सांसारिक 'माँ' के हृदय में अपने 'अंश' - बच्चे के लिये, अटूट प्यार तथा शुभ - कामनाएं होती हैं, जो इलाही 'माँ', परमात्मा का अपने 'अंश', जीव के लिए, असीम आत्मिक प्यार तथा शुभ कामनाओं का ही 'अक्स' व 'प्रतीक' है।

गुरबाणी में इस इलाही प्यार को यूँ दर्शाया गया है -

जीअ जंत सभि पाछै करिआ प्रथमे रिजकु समाहा॥ (पृ १२३५)

अपुने जीअ जंत प्रतिपारे॥ जिउ बारिक माता संमारे॥ (पृ १०५)

अपुने जन कउ सासि सासि समारे॥

नानक ओइ परमेसुर के पिआरे॥ (पृ २७६)

प्रतिपालै जीअन बहु भाति॥ जो जो रचिओ सु तिसहि धिआति॥ (पृ २९२)

सरब जीआ प्रतिपालदा मेरी जिंदुड़ीए

जिउ बालक पित माता रामा॥ (पृ ५४१)

कोटि ब्रहमंड को ठाकुरु सुआमी सरब जीआ का दाता रे॥

प्रतिपालै नित सारि समालै इकु गुनु नही मूरखि जाता रे॥ (पृ ६१२)

सारि समालै निति प्रतिपालै प्रेम सहित गलि लावै॥ (पृ. ६१७)

मेरा मात पिता हरि राइआ॥

करि किरपा प्रतिपालण लागा करी तेरा कराइआ॥ (पृ. ६२६)

ओहु निरगुणीआरे पालदा भाई देइ निथावे थाउ॥

रिजकु संबाहे सासि सासि भाई गूडा जा का नाउ॥ (पृ. ६४०)

गरभ अगनि महि जिनिहि उबारिआ॥

रकत किरम महि नही संघारिआ॥ (पृ. १०८४)

हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक॥

हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक॥

सहजे सहजि खिलाइदा नही करदा आलक॥

अउगणु को न चितारदा गल सेती लाइक॥ (पृ. ११०१)

खेलि खिलाइ लाड लाडावै सदा सदा अनदाई॥

प्रतिपालै बारिक की निआई जैसे मात पिताई॥ (पृ. १२१३)

यद्यपि जीव की शारीरिक तथा मानसिक संभाल तथा विकास के लिए अकाल पुरुष ने अपने 'हुकुम' द्वारा कुदरत की रचना के साथ ही सम्पूर्ण तथा अटल प्रबन्ध कर दिया है, तब हमारे 'मानसिक विकास' के लिए भी आदि से ही सम्पूर्ण, त्रितिरहित, अटल साधन या 'धर्म' हमारी अंतर-आत्मा में ही लिख दिया है। ताकि उसके प्यारे 'अंश-रूप' जीव को, आत्मिक जीवन के सही मार्गदर्शन के लिए, किसी बाहरी दिमागी ज्ञान का सहारा न लेना पड़े। क्योंकि बाहरमुखी दिमागी ज्ञान 'अहम्' के भ्रम भुलाव में से उत्पन्न होता है। इसलिए बाहरी दिमागी ज्ञान बहुरंगी, परिवर्तनशील, अधूरा तथा गलत हो सकता है।

जीवन का सबसे ऊँचा-पवित्र विशेष तथा आवश्यक 'पक्ष' आत्मिक जीवन है। जबकि अकाल पुरुष ने अपने अंश रूपी जीव के शारीरिक तथा मानसिक जीवन का प्रबन्ध किसी बाहरी शक्ति पर नहीं छोड़ा, तो जीव के महत्त्वपूर्ण "आत्मिक पक्ष" के विकास का प्रबन्ध किसी बाहरमुखी, सीमित, भ्रम-भुलाव वाले, दिमागी ज्ञान या "धर्म" पर कैसे छोड़ा जा सकता है? दूसरे शब्दों में, जीव के "आत्मिक जीवन" विकास के लिए भी,

“अंतर-आत्मा” में ही अनुभवी ‘तत्-ज्ञान’ गुप्त रूप में प्रदान किया है, जिसे हम अज्ञानता वश बौद्धिक ज्ञान द्वारा बाहर से ढूँढते फिरते हैं-

सभ किछु घर महि बाहरि नाही॥

बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही॥

(पृ १०२)

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई॥

गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥

(पृ ४४२)

यह आत्म-प्रकाशमयी “तत् ज्ञान” या “आत्मिक धर्म” का प्रकाश धुर अंदर वृत्तियों को शब्द-सुरति में जोड़कर, अटूट सिमरन द्वारा ही अनुभव किया, बूझा, सीझा, पहचाना तथा प्रकट किया जा सकता है।

अकाल पुरुष को ज्ञात था कि जीव, अहम् के भ्रम भुलाव में, माया के मनमोहक चमत्कारों में फंस सकता है तथा ‘कर्मबद्ध’ होकर आवागमन के चक्कर में पड़कर, मोहमाया में गलतान होकर, अपने इलाही ‘माता-पिता’ को भूल सकता है। इसीलिये जीव को मोह-माया के भ्रम-भुलाव में से निकालने के लिये, अकाल पुरुष ने आदि काल से ही गुरू, अवतार, पैगम्बर (prophets) संसार में भेजे। इन गुरू, अवतारों ने अपने अपने समय की आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न “धर्मों” की रचना करके, जीवों को आत्मिक जीवन का राह दिखाया, तथा साथ ही अपनी-अपनी भाषा में बाणी रचकर सदा के लिए छोड़ गए, ताकि जीव इनसे आत्मिक जीवन के लिए हमेशा प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सके।

इन गुरू, अवतारों के ज्योति-ज्योत समा जाने के पश्चात्, कुछ समय उपरांत धीरे-धीरे माया के ‘भ्रम-भुलाव’ के प्रभाव अधीन, जनता फिर से मोह माया में गलतान होती हुई, अपने कर्त्ता को भूलती गई। इस प्रकार, जीव अपने इलाही माता-पिता की ममतामयी गोद की सुखदाई छत्र-छाया से वंचित हो गये।

दाति पिआरी विसरिआ दातारा॥

(पृ ६७६)

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे॥

किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे॥

(पृ ८५७)

इस समय भी, जनता की मानसिक दशा, वैसी ही है। अहम् के भ्रम भुलाव में, जीव स्वाभाविक रूप से खुदगर्ज या स्वार्थी है। मायिकी स्वार्थ की सरल तथा तत्काल पूर्ति के लिए, इन्सान किसी अनदेखी शक्ति की ताक में लगा रहता

है, ताकि करामात, व रिद्धि - सिद्धि द्वारा अपने दुख - क्लेश, शीघ्र दूर कर सके, या अपने मायिकी स्वार्थ पूरे कर सके। मांग एवं पूर्ति (Demand and Supply) के नियम अनुसार, इन्सान की मायिकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक ढोंगी साधू, फकीर तथा औलिये प्रकट हो जाते हैं। इस मायिकी “सौदेबाजी” को ही हम “धर्म” या “परमार्थ” समझ बैठे हैं। यह धार्मिक रोग सिक्ख जगत में भी प्रचलित है। जबकि गुरबाणी हमें इस सौदेबाजी के ठीक विपरीत, एक मात्र, पवित्र - पावन, ‘आत्मिक - जीवन मार्ग’ दिखा रही है तथा अन्तरीय आत्मिक “तत्त - ज्ञान” वाले अनुभवी आत्मिक मंडल का उपदेश देती है।

यहाँ ही बस नहीं हम इस ऊँची व पवित्र इलाही गुरबाणी को भी, अपने निजी मायिकी स्वार्थ के लिए प्रयोग करके, इस दैवीय आत्मिक ‘दात’ का निरादर कर रहे है।

‘जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ’ के अटल नियम अनुसार हमारा मन अच्छी - बुरी संगत का प्रभाव लेता तथा देता रहता है। जब ‘ठोस’ तथा ‘जड़’ वस्तुएं भी बाहरी प्रभावी द्वारा “ताता - सीरा” हो सकती है, तो हमारे सूक्ष्म मन, एक दूसरे की संगति के प्रभाव से कैसे बच सकते हैं?

दूसरे शब्दों में, संगति या एक दूसरे से मेल - मिलाप ही, एक - दूसरे पर प्रभाव डालने या ‘प्रचार’ का सरल और कारगर साधन हैं। इसीलिये गुरबाणी में ‘साध संगति’ करने की ताकीदी प्रेरणा है -

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत॥ (पृ ६३१)

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥ (पृ १२)

सेई पिआरे मेल, जिन्हां मिलिआं तेरा नाम चिति आवै॥ (अरदास)

ओइ साजन ओइ मीत पिआरे॥

जो हम कउ हरि नाम चितारे॥ (पृ ७३९)

कोई आवै संतो हरि का जनु संतो

मेरा प्रीतम जनु संतो मोहि मारगु दिखलावै॥ (पृ १२०१)

जिस प्रकार शिक्षण - प्रणाली में कई श्रेणियाँ हैं तथा इनके अध्यापकों की योग्यताएं (qualifications) भी भिन्न भिन्न होती है तथा विद्यार्थियों की दिमागी

योग्यता के अनुसार, भिन्न भिन्न कक्षाओं में पढाई होती है। इसी प्रकार धार्मिक प्रचार भी जिज्ञासु की मानसिक ग्रहण – शक्ति व धार्मिक रुचि तथा प्रचारक की योग्यता पर निर्भर है।

परन्तु याद रखने योग्य जरूरी नुक्ता यह है कि यह भिन्न भिन्न धर्मों के प्रचार की प्रणाली, केवल बुद्धि मंडल तक ही सीमित है।

त्रिगुणी मायिकी – मंडल में धार्मिक – प्रचार, दिमागी – ज्ञानी या विद्वान कर सकते हैं, परन्तु चौथे पद के आत्मिक मंडल में इनके दिमागी ज्ञान की पहुँच नहीं। इसलिये जब गुरबाणी में आत्मिक मंडल के शब्द आते हैं, तो हम उनका दिमागी ज्ञान द्वारा नाममात्र अर्थ निकाल कर टाल – मटोल ही कर देते हैं।

आत्मिक मंडल के “तत्त – ज्ञान” की व्याख्या केवल विवेक बुद्धि वाले, ‘तत्त – जोग – के – बेटे’ बरखो हुए, विरले अनुभवी गुरमुख – जन ही कर सकते हैं।

बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ॥

इह बाणी महा पुरख की निज घरि वासा होइ॥

(पृ ९३५)

अनेक धर्मों की भिन्न – भिन्न धारणाओं पर आधारित, बाहरमुखी कर्म – क्रिया, रिवाज, मर्यादा में, भिन्नता और मत – भेद होने अनिवार्य हैं, जिससे वाद – विवाद, लड़ाई – झगड़े, ईर्ष्या – द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा धार्मिक सम्प्रदाओं में मत – भेद होने के कारण कई और नए गुट बनते जाते हैं।

यह गुरबाणी में दर्शाए ‘सगल संगि हम कउ बनि आई’ के आशय के बिल्कुल विपरीत है।

गुरू – अवतारों की बाणी में दर्शाए सांझे अंतरमुखी आत्मिक ‘नुक्ते’, ‘भेद’ या ‘तत्त’ के आत्मिक ज्ञान से हम बेखबर, अनजान या लापरवाह हो गये हैं या जान – बूझ कर मचले बने बैठे हैं।

पिछले जन्मों की धार्मिक कमाई के फलस्वरूप, गिनी चुनी आत्माएँ, बाहरमुखी त्रिगुणी मंडल के धर्म की कर्म – क्रिया से संतुष्ट नहीं होती। उनके हृदय की गहराइयों में किसी उत्तम आत्मिक मंडल के अंतरमुखी सूक्ष्म अनुभवी धर्म की सूक्ष्म आकांक्षा या भूख अनजाने ही लगी रहती है।

इस सूक्ष्म आत्मिक ‘आकांक्षा’ या गुप्त ‘धुक – धुकी’ द्वारा जीव की अंतरआत्मा में, कुदरती तौर से, अपने स्त्रोत, अकाल पुरुष की ओर अनजाने

ही 'खींच' बनी रहती है। चाहे यह सूक्ष्म आत्मिक 'आकर्षण', माया के काले-घनघोर बादलों के कारण क्षीण हो जाता है, परन्तु फिर भी किसी न किसी रूप में, यह गुप्त सूक्ष्म भूख, जीव को अनजाने ही, आत्मिक मंडल के 'इलाही धर्म' के प्रकाश 'शब्द' 'नाम' की ओर उकसाती, प्रेरित करती तथा खोज करवाती रहती है।

ऐसे उत्तम जिज्ञासु की सच्ची - पवित्र आत्मिक लगन के फलस्वरूप, उन पर सतिगुरु की कृपा दृष्टि होती है, तथा उन्हें सतिगुरु किसी गुरुमुख जन, इलाही जीवन वाले, "तत्त-जोग-के-बेते", महापुरुष से मिला देता है तथा साथ-संगति द्वारा, उन जिज्ञासुओं को अंतरमुखी अनुभवी ज्ञान की "दात" बख्शिाश में मिलती है। इस प्रकार इन उत्तम जिज्ञासुओं का जीवन परिवर्तित होकर आत्मपरायण हो जाता है। ऐसे बख्शिे हुए गुरुमुख जन, आगे अन्य उत्तम जिज्ञासुओं को, गुरू की बख्शिाश द्वारा, मार्ग दर्शन व सहायता करते हैं।

किरपा करे जिसु पारबहमु होवै साधू संगु॥

जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तितु तितु हरि सिउ रंगु॥ (पृ ७१)

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी॥

मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी॥ (पृ २०४)

सेई पिआरे मेल जिन्हां मिलिआं तेरा नाम चिति आवै॥ (अरदास)

पढ़ - पढ़ाया, सुना - सुनाया, सीखा - सिखलाया, समझा - समझाया, बाहरमुखी दिमागी ज्ञान, बुद्धि की "प्राप्ति" है तथा इसके प्रचार का सिलसिला भी, शारीरिक तथा दिमागी "करत्तव" है। गुरू, अवतारों के दर्शाए हुए अंतर - आत्मिक "तत्त-ज्ञान" के प्रकाश रूप 'शब्द' 'नाम' के गुप्त भेदों को, बुद्धि मंडल की फिलोस्फी (philosophy) अनुभव नहीं कर सकती, क्योंकि यह "आत्मिक-खेल" बुद्धि की पकड़ से बाहर है।

उदाहरणतया बिजली के विषय में किताबी ज्ञान, पढ़ना - पढ़ाना उसके निजी तजुरबे से भिन्न होता है। (Personal experience of electric shock is quite different from the bookish intellectual knowledge about electricity). इसी प्रकार आत्मिक मंडल के "जीवन रौं", "शब्द", "नाम" के "परगटि 'पाहारें' जापदा" या "प्रकाश" के "आनंद" रंग रस को अंतर - आत्मा में, निजी अनुभव द्वारा "महसूस" करना अलग बात है तथा

इस आत्मिक मंडल के “तत्त-ज्ञान” के भेद के विषय में केवल दिमागी ज्ञान घोटना बिल्कुल अलग बात है।

गुरबाणी में इसी अंतर-मुखी आत्मिक “तत्त-ज्ञान” का वर्णन, उपदेश तथा अनुभव द्वारा इसे प्राप्त करने की युक्ति भरपूर है। फिर भी हम इस आत्मिक मंडल की इलाही अनमोल “दात”, “अनुप वस्तु” के आनन्द, रंग, रस, सुख, स्वाद से स्वयं को भी वंचित कर रहे हैं तथा जगत को भी इससे वंचित रखा हुआ है।

मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ॥

जोति बिना जगदीस की जगतु उलंघे जाइ॥ (पृ १३७०)

इस लापरवाही, अज्ञानता, भारी भूल, भ्रम-भुलाव के कारण निम्नलिखित हैं—

1. हम बाहरमुखी कर्मकांडों को ही, “सम्पूर्ण धर्म” समझे हुए हैं। इसके रटन (routine) में ही मस्त एवं संतुष्ट हैं।
2. दिमागी ज्ञान तथा धर्म को हमने निजी मायिकी स्वार्थ की पूर्ति का ही “साधन” बनाया हुआ है।
3. त्रिगुणी अहम् के भ्रम-भुलाव वाली धार्मिक अवस्था को ही अंतिम धार्मिक मंजिल समझे हुए हैं।
4. चौथे पद के आत्मिक मंडल की अनुभवी इलाही खेल की हमें—
सूझ ही नहीं,
ज्ञान ही नहीं,
निश्चय ही नहीं,
आवश्यकता ही नहीं,
भूख ही नहीं,
उद्यम ही नहीं।
5. हमने अपने जीवन को “अहम्” के भ्रम-भुलाव की अन्धेरी कोठड़ी में कैद किया हुआ है जिसमें आत्मिक प्रकाश की किरण के प्रवेश होने की सम्भावना ही नहीं है।

We have sentenced ourselves to life long imprisonment in the solitary Dark Dungeon of our own ego-without any chance of entry of rays of Divine Light.

6. स्वयं रचित अहम् की अंधेरी काल-कोठड़ी में भी, अपने-अपने अधूरे, गलत तथा फोकट धार्मिक निश्चय की काली ऐनक पहन रखी है, जिसे हम उतारने के लिए तैयार नहीं।

इस प्रकार हमने अपना जीवन -

“पलचि पलचि सगली मुई झूठे धंधे मोहु॥” (पृ १३३)

वाला बना रखा है :-

बरखो हुए गुरुमुख जन, महापुरुषों द्वारा, गुरू अवतारों के दर्शाए आत्म-प्रकाश, या “तत्त ज्ञान” की बरिष्ठाश, सीना-बसीना, ज्योति-से-ज्योति जगाने का अदृट तथा त्रुटिरहित सिलसिला, लगातार चलता आ रहा है।

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंदु॥

कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुरु मंतु॥ (पृ १४२९)

परन्तु यह आत्मिक मंडल की, निराली, गुप्त तथा दुर्लभ ‘खेल’ है जो किसी विरले, “कोटन-में-कोऊ” भाग्यशाली गुरुमुख प्यारों पर घटती है। इनके जीवन की आत्मिक किरणों (Divine vibrations) द्वारा कलयुग में, अंतर-मुखी आत्मिक धर्म का इलाही प्रकाश, कहीं कहीं चमकता-दमकता दिखाई देता है।

ऐसे जन विरले संसारे॥ गुरु सबदु वीचारहि रहहि निरारे॥ (पृ १०३९)

इन दोनों मंडलों के धर्म को भली-भांति स्पष्ट करने के लिए तुलनात्मक वर्णन किया जाता है:-

आत्मिक मंडल का अंतरमुखी धर्म

अनुभव का खेल है।

“बोली” हीन है।

“अक्षर” हीन है।

अंतर-आत्मिक ‘छुह’ है।

अनुभवी ‘सूझ’ है।

त्रिगुणी मंडल के बाहरमुखी धर्म

दिमागी विषय है।

बोली वाला है।

अक्षरीय है।

बाहर से प्राप्त किया जाता है।

सीखा-सिखलाया जाता है।

आत्म प्रकाश है।
 ज़ाहरा - ज़हूर है।
 एको - एक 'नाम' है।
 एक ही रंग है।
 विस्मादी 'खेल' है।
 एकता है।
 नम्रता है।
 प्यार है।
 एक चिंतन है।
 घर महि सभ किछु है।
 'प्रिम - खेल' है।
 अन्तर बिलोना है।

दिमागी ज्ञान है।
 भम - भुलाव है।
 अनेक वेश हैं।
 अनेक रंग है।
 दिमागी खेल है।
 द्वैतभाव है।
 अहम् का बोलबाला है।
 घृणा है।
 अनेक चिंतन है।
 बाहर ढूँढना है।
 मुर्दा साधन है।
 शारीरिक कर्म क्रिया है।

किस्ती महापुरुष ने इस विषय पर यूँ प्रकाश डाला है -

संसार बहक रहा है, आग के शोले उठ रहे हैं। जिन्हें ईश्वर ने सुख प्रदान किया है, वे ईर्ष्या, द्वेष, गिनती, हिसाब, शंका आदि, आन्तरिक अग्नि में, जल रहे हैं। बे - यकीनी तथा अविश्वास का भूत आत्मा को चिपका हुआ है, जड़े धरती से उखड़कर, बाहर निकलकर, सूख गयी हैं तथा ज्वलन् पदार्थ (ईंधन) बन चुकी है। रेशम तन पर खड़खड़ाहट करते हैं, परन्तु यह खड़खड़ाहट सूखे पत्तों की है तथा जो, अन्न, वस्त्र के अभाव से दुःखी हैं, उन्हें भूख, प्यास, नंगापन, दरिद्रता, रोग, कष्ट आदि सता रहे हैं। गरीबी की मार ने कमर तोड़ दी है। मन टूटे हुए हैं, संसार तपा हुआ, शरीर गर्म, जीवन क्षेत्र गर्म, बाहरमुखी, मनमुखी वृत्तियाँ गर्म, काम गर्म आग, क्रोध गर्म आग, लोभ गर्म आग, मोह गर्म आग, तृष्णा गर्म आग, भूख गर्म आग, अमीरी केवल आग की लपटें, गरीबी तपी, मन तपा, चित्त तपा, मनमुख टूटे हुए, सूके हुए जीवों का प्यार तपा, हाय! चारों ओर आग ही आग, अंदर भी आग, बाहर भी आग, दीन भी आग, दुनिया भी आग, इन सबके बीच प्रभु के ध्यान में बैठा प्रहलाद, मन ठंडा, चित्त ठंडा, जीभ ठंडी, दिल ठंडा, तृष्णा रहित दिल हरा भरा, जड़ें प्रभु याद में गढ़ी हुई, सहज - स्वभाविक गढ़ी हुई, अचेत ही गढ़ी हुई, सुरति एकाग्र, रोम रोम से अमृत धारा बह रही है, आग भी प्रणाम कर रही

है, प्रभु का भक्त बैठा है, बस केवल प्रभु का प्यार ठंडा है। प्रभु का प्यार 'खुनक' है 'खुनक नाम खुदाइआ', इससे स्पर्श प्राप्त करके ही मनुष्य ठंड महसूस करता है। सच्चा सुख प्राप्त करता है, आत्मा शीतल होती है। चित्त भटकन छोड़, शांत हो जाता है, प्रभु की कृपा बचाती है। 'ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई।'

मानवता इस शीतलता को ढूँढ रही है, कुदरत ढूँढ रही है, तभी तो मनुष्य को साकार रूप देकर भेज रही है। "माँ" जब बिछुड़े बच्चे को मिलती है, उसे गले लगाती है, तब उस क्षण भर के लिए इस अमृत शीतलता की झलक पड़ती है। जब इन्सान की इच्छा, तीव्र इच्छा - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वश होकर फलती है, तब फलीभूत होने पर, उस क्षण भर के लिये, इस शीतलता की झलक पड़ती है। भूखे को जब रोटी का टुकड़ा नसीब होता है, तो उसके नेत्रों में एक सुख झलकता है, यह इसी सुख का प्रतिबिम्ब है। प्यासे को जब जल की प्राप्ति होती है, तो इसी अवस्था की बिजली कौंध जाती है। दीन और दुनिया, इस आत्मिक शीतलता को खोज रहे हैं, यें, नाम - खुनकी की अमर, अमित, अटल लालसा में है। यह लालसा सृष्टि की बनावट में है, मिट नहीं सकती, शीतलता कैसे मिले? काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जब तक मन, चित्त, बुद्धि, आन्तरिक वृत्ति तथा आत्मा में बसते हों, यह मनुष्य के शत्रु हैं।

आत्मा शान्त हो जाए, सुरति की नन्हीं - नन्हीं, बालों से महीन, किरणों की भांति पतली सूक्ष्म जड़ें, निरंकार, करतार, अकाल पुरुष में किसी प्रकार गढ़ जाएं, तो यही "मानवता" के सुन्दर आभूषण हैं, वस्त्र हैं, हथियार हैं, सेवक हैं, अन्यथा आग की लपटें हैं। मनुष्य के सभी आन्तरिक रंग, दुख की आग, इन पांचों ने जला रखी है, संसार के अधिकतर दुख, इन्ही की बनाई खिचड़ी हैं, इनकी चाकरी में तो वह सुख हैं नहीं, जो शाह बैहलोल जैसे सिमरन वाले साधू के हाथों के "स्पर्श" में है, वह ठंडक पड़ती नहीं, जिसे छाती में रखकर प्रह्लाद आग में बैठ सकता था और तपते स्तम्भ से लिपट सकता था, शीतलता में संतोष आता है, आग में कैसा संतोष! कैसा ईमान!! अतः संसार जलता हुआ, अपनी लगाई आग को बुझाने के लिए धर्म एवं मजहब की ओर दौड़ा, यह वहाँ जाकर भी जलते हैं, मजहबों को भी इन्होंने आग लगा दी, वह अन्दर जो आग लगी थी, जहाँ भी गया, वहाँ और बढ़ गई, जलन बुझी नहीं, ठंडक पड़ी नहीं, वह ठंडक कहाँ है? भ्रम, भांति, मजहबों के झगड़े, जंग, गुटवन्दियाँ, अहंकार की भावनाओं, 'मन सन्तुष्टियों', मनघड़न्त सिद्धान्तों, मन बहलाव आदि के जाल में तो इतना जहर चढ़ता है कि

भंगी – पोस्तियों की भांति, लोग मजहब के नियमों और शरीयतों में फंस कर मर जाते हैं, पता नहीं यूँ संसार क्यों जल रहा है। आग दिलों, शहरों, देशों, को लगी हुई है, आपाधापी पड़ी हुई है, शोर, तृष्णा, कूड़, मार रहा है, यह अपने हाथों से लगाई हुई आग है। इस आग में कोई प्रभु का प्यारा जीव, 'कोटन में कोऊ', ठंडा है, वह आग में बैठा, ठंडा है, आग उसे कुछ नहीं कहती, उसके सिर पर लाल शोलों का ताज बनाती हुई, आग उस पर कुरबान होती है।

ठंडी सुरति, अंदर अपने आप में इकट्ठी सुरति, एक नुक्ता है, जो हाथ नहीं आता। बात एक नुक्ते (भेद) में खत्म होती है, परन्तु वह नुक्ता हाथ नहीं लगता। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इस आन्तरिक केन्द्र की प्राप्ति के लिए हथियार हैं, परन्तु इनकी इच्छाओं के फैलाव ने कितनी आग मचा रखी है।

इस प्रज्वलित संसार में, कर्म – क्षेत्र की तपश में, कहीं ठंड प्राप्त हो जाए! तपा हुआ प्यार मोह हो जाता है, तपी भक्ति काम हो जाती है, तपी सुरति ही अहंकार है, तपी जीवन तीव्रता, जीवन जोश – क्रोध हो जाता है। मजहबों के वैर, द्वेष, तपी हुई, मुर्दा हुई, मनूर हुई जिज्ञासा ही तो है। इस प्रकार दीनदार, दुनियादारों से अधिक ज़हरीले हो जाते हैं, तपी तपस्या – क्रोध, तपा गृहस्थ – विरोध, तपी बुद्धि – शैतान, तपी अरोगता – बीमारी, तपा चित्त – दुख और क्लेश।

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ॥

कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥

(पृ. २६२)

इस प्रकार धर्म कर्म भी, जप, तप, पूजा, सेवा, हाँ जी प्यार आदि सब रोग हैं, कुछ शारीरिक तथा कुछ मानसिक, दीन भी रोग है, दुनिया के कर्म, योग सब मर्ज (रोग) हैं, तपश हैं, जंजाल हैं, सुरति टिकराव में नहीं, दिल टिकाव में नहीं। दीन में भी तृष्णा ने इन्सानों को मार दिया, दुनिया में तो इस 'हफ' ने पहले ही मार रखा है, हाय ठंड कहाँ?

सदियों तक तू समझता फिरेगा कि तू बहुत आध्यात्मिक उन्नति कर रहा है, तुझ जैसा कोई नहीं, तू बड़ा दीनदार है, बड़ा पुण्य – आत्मा है, बड़ा तप कर रहा है, तू भीतर ही भीतर स्वयं को पारशामी समझने लगा होगा। याद रहे, सदियों पश्चात्, जब ध्यानपूर्वक देखेगा, तब, तुझे जान पड़ेगा, कि तू चलता भी वहीं

“खड़ा” है, जहाँ से तू चला था। भाई! आध्यात्मिक उन्नति यूँ नहीं होती, जब किसी की कृपा दृष्टि तुझ पर पड़ेगी, तब तू जो भी कदम उठाएगा, वह एक एक कदम एक एक मंज़िल होगी। आध्यात्मिक उन्नति, आत्मिक उन्नति, किसी की कृपा दृष्टि का खेल है। भाई गुरदास जी ने इसी अंदाज में लिखा है—

लख धिआन समाधि लाइ गुरमुखि रूपि न अपड़ि सकै।
लख गिआन वरवाणि करि सबद सुरति उडारी थकै।
बुधि बल बचन बिबेक लख ढहिढहि पवनि पिरमदरि धकै।
जोग भोग बैराग लख सहि न सकहि गुण वासु महकै।
लख अचरज अचरज होइ अबिगति गति अबिगति विचिअकै।
विसमादी विसमादु लख अकथ कथा विच सहिम सहकै।
गुरसिखी दै अखि फरकै। (वा. भ. गु. २८/२२)

जिसे गुरू ग्रन्थ साहिब में ‘मैल’ कहा गया है, ‘हम मैले तुम ऊजल करते’, यह भीतरी स्वयं लगाई आग है, जो सुरति को खिंडाव में ले जाती है। ठंडी सुरति—सदा इकट्ठी होती है, ठंडी आत्मा—प्रभु से मिली होती है, प्रभु उसी में उपस्थित होता है। तपी सुरति पाप है, ठंडी सुरति पुण्य है, मैल इसी आग की ‘लौ’ है, जो लग जाती है, तो आत्मा सड़ जाती है। हम अपने कर्मों से मैले हो जाते हैं, कभी किसी दूसरे के कर्म भी हमें मार जाते हैं, “छुह” है न! लग जाती है, अच्छी भी, बुरी भी। मनुष्य एक है, इसलिए सम्पूर्ण मानव जाति के कर्मों का प्रभाव, एक—एक मनुष्य पर पड़ता है तथा एक मनुष्य के कर्मों का प्रभाव, सम्पूर्ण मानव जाति पर। सारी दुनिया के कर्म, यूँ मेरे ही कर्म है। मुझे ‘मैं’ ही मैल लगाती है। इसमें ‘कोई हरिआ बूट रहिउ री’। बस, सब कुछ वही परमात्मा है। यदि सुरति तपी है, विखण्डित है, मैली है, भारी है जो वही पाँच जवान सेवक हैं, वही पाँच शत्रु हैं। वही कुदरत हरि ‘रूप’ है, वही कुदरत खाने को दौड़ती है। वही सब धर्म, सब संसार उसकी रज़ा है और सुन्दर है, वही रंग है तथा महारंग है, जहाँ जीवन सुख रूप है। एक नुक्ता है, परन्तु कोई विरला बख्शा हुआ गुरमुख जन ही पहचानता है। जिसे यह दाव आ गया, वह अपनी सुरति के उतार, चढ़ाव, तपश, ठंडापन, मैलापन तथा उज्ज्वलता, निर्मलता, सरलता, हल्कापन, भारीपन आदि पहचानने लगता है। “स्वयं” को

जाँचता है। गिरना सम्भलना तो है ही, परन्तु “रूहानी हालत” आरम्भ हो गई। बेहोशी थी होश आई, मौत थी जीवित हो उठा। गफलत ‘मुर्दा-सन्तुष्टियों’ का रंग छूटा, जीवन हिला, धड़का, प्यार की पीड़ा होने लगी, दर्द दुख प्रतीत होने लगी, दर्द उठने लग पड़ी, ‘हाय’ ‘हाय’ होने लगी। “जीवित हो उठा”, विष नष्ट होने लगा। परन्तु यह बहुत ऊँची अवस्था का खेल है, कोई विरला है, जिसे इस “नुक्ते” का पता लगता है। भाई गुरदास जी फरमाते हैं—

दरसनु देखि पतंग जिउ जोती जोति समावै।
 सबद सुरत लिव मिरग जिउ अनहद लिव लावै।
 साधसंगति विच मीनु होइ गुरमति सुख पावै।
 चरण कवल विचि भवरु होइ सुख रैण विहावै।
 गुर उपदेस न विसरै बाबीहा धिआवै।
 पीर मुरीदां पिरहड़ी दुबिधा ना सुखावै।

(वा. भा. गु. २७/१४)

शीतल दीन, शीतल दुनिया एक ही दाम की वस्तुएं हैं, परन्तु शीतल दीन और शीतल दुनिया की “सामग्री” में, इस शीतलता का निजी अनुभव, मनुष्य की आशा को प्राणदान देता है। हाँ, “कुछ है”, यह स्वयं को प्रतीत होता है, भीतर ही घटित होता है, महसूस होता है, जीवन प्रदान करता है, चित्त चाहता है कि बाहरमुखी, “आपा-धापी विकराल”, “दुविधा विकराल”, ‘अंहकार व द्वेष विकराल’, कृपणता-कंगालता विकराल, ‘खुदगर्जी-मोह-नीचता विकराल’, हिंसा, दिल-दुखाना, दुख देना आदि, अनात्म धंधों में प्रभु की ओर मुख करते हुए चलें, परन्तु कलयुग, चढ़े दरिया की भाँति भयंकर रूप धारण कर रहा है। सभी रसातल की ओर बह रहे हैं, कोई शूरवीर ही तरक्की की ओर जाने का साहस करे तो करे। दरिया के बहाव के विपरीत अपना बाहुबल अजमाए, सच्ची शूरवीरता इसी में है। रसातल की ओर बही तो सभी जाते हैं।

यह बात सरल नहीं, सुरति को, आत्मा को, प्रभु से जोड़कर रखना, लगातार उसी में “साँस लेना”, जब ज़रा सी शीतलता से दिल को आनन्द मिलता है, तो दिल चाहता है कि किसी से न मिलें, इस शीतलता को दिल में ‘दबाकर’ सम्भाल लें, छुपा लें, किसी को न बताएं और जंगल की ओर भाग जाएं। यह पत्नी, पुत्र, मित्र, भाई सब मेरे शत्रु हैं, मुझे तपा देते हैं, मेरी ‘ठंडक’ छीन लेते हैं, यूँ कर्म-सुरति को फिर से तपाने लगते हैं और दूसरी

ओर दिल मीठा हो जाने के कारण, सारा कुटुम्ब अच्छा लगने लगता है और मीठा होता है तथा फिर मिठास अपने मीठेपन से चोट मारती है -

पैडा है दूर गौरीए नी, धुर दे असीं मुसाफिर॥

लखां मंजलां तों आए, अगे है राह सवाया॥

गुरबाणी इस विषय में यूं प्रकाश डालती है -

जिसु गिहि बहुतु तिसै गिहि चिंता॥

जिसु गिहि थोरी सु फिरै भ्रमंता॥

दुहू बिक्सथा ते जो मुकता सोई सुहेला भालीऐ॥१॥

गिह राज महि नरकु उदास करोधा॥

बहु बिधि बेद पाठ सभि सोधा॥

देही महि जो रहै अलिपता तिसु जन की पूरन घालीऐ॥२॥

जागत सूता भरमि विगूता॥ बिनु गुर मुकति न होईऐ मीता॥

साधसंगि तुटहि हउ बंधन एको एकु निहालीऐ॥३॥

करम करै त बंधा नह करै त निंदा॥

मोह मगन मनु विआपिआ चिंदा॥

गुर प्रसादि सुखु दुखु सम जाणै घटि घटि रामु हिआलीऐ॥४॥

संसारै महि सहसा बिआपै॥ अकथ कथा अगोचर नही जापै॥

जिसहि बुझाए सोई बूझै ओहु बालक वागी पालीऐ॥५॥

छोडि बहै तउ छूटै नाही॥ जए संचै तउ भउ मन माही॥

इस ही महि जिस की पति राखै तिसु साधू चउरु ढालीऐ॥६॥

जो सूरा तिस ही होइ मरणा॥

जो भागै तिसु जोनी फिरणा॥

जो वरताए सोई भल मानै बुझि हुकमै दुरमति जालीऐ॥७॥

जितु जितु लावहि तितु तितु लगना॥

करि करि वैखे अपने जचना॥

नानक के पूरन सुखदाते तू देहि त नामु समालीऐ॥८॥

(पृ १०१९)

हाए यह रास्ता कठिन है—

ते विरले सैंसार विचि दरसन जोति पतंग मिलन्दे।

ते विरले सैंसार विचि सबद सुरित होइ मिरग मरन्दे।

ते विरले सैंसार विचि चरण कवल होइ भवर वसन्दे।

ते विरले सैंसार विचि पिरम सनेही मीन तरन्दे।

ते विरले सैंसार विचि गुरु सिरव गुरु सिरव सेव करन्दे।

भै विचि जंमनि भै रहनि भै विचि मरि गुरु सिरव जीवन्दे।

गुरमुख सुख फलु पिरमु चखन्दे।

(भाई गुरदास जी वार २८/१७)

परन्तु जो इस मार्ग पर चलते हैं, उन पर गुरु की दयालुता का स्वरूप भाई गुरदास जी इस प्रकार दर्शाते हैं—

अमिओ दिसटि करि कछु वांगि भवजल विच ररवै।

गिआन अंस दे हंस वांगि बुझि भरव अभरवै।

सिमरण करदे कूज वांगि ऊडि लखवै अलखवै।

माता बालक हेतु करि ओहु साउ न चरवै।

सतिगुर पुरखु दइआलु है गुरसिरव पररवै।

पीर मुरीदां पिरहड़ी लख मुली अनि करवै। (भाई गुरदास जी वार २७/१३)

